आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासो में सौन्दर्य का कलात्मक–रुप

डा0 मनीषा सिंह

एम.ए., पी.एच.डी., काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य का प्रमुख उद्धेश्य ही माना है सौन्दर्य की स्थापना करना। जो साहित्य इस उद्धेश्य को पूरा करने में विफल हो जाए उसे वे साहित्य, एक सार्थक साहित्य के रुप में नहीं ग्रहण कर पाते। द्विवेदी जी द्वारा स्वीकृत यह 'सौन्दर्य' नेत्रों को शान्ति देने वाला या मन को थोड़ी देर के लिए सुकुन देने वाला कोई मांसल या मौलिक वस्तु बोध नही है, बल्कि यह एक विचारधारा है जो सम्पूर्ण विश्व में एक सामंज़स्यता, एक समरसता लाने का प्रयत्न करती है। पूरे मानव समाज में एक ही रागात्मक हृदय स्थापित करने का प्रयास करती है। अपने प्रथम उपन्यास में ही द्विवेदी जी इस विश्वजनीन सौन्दर्य–संस्कृति को स्थापित करने की विचारदृष्टि को प्रस्तुत करते है .... एक जाति दूसरो को मलेच्छ समझता है–इससे बढ़कर अशांति का कारण और क्या हो सकता है भट्ट! तुम्ही ऐसे हो जो नर लोक से किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही करुणायित चित्त को हृदयांगम कर सकते हो।..... तुम इसके हृदय को संवेदनशील और कोमल बना सकते हो।''1

भट्टिनी का यहआधुनिकीकरण कथन मनुष्य को केवल मनुष्य मानने की मान्यता को प्रमाणित करता है और जब तक यह बोध उत्पन्न नहीं होता, तब तक सुन्दरता और कलात्मकता की उत्पत्ति भी नही हो सकती है; मनुष्य को मनुष्य रुप में देखने के लिए उसी समरसता, रागात्मकता की आवश्यक्ता होगी जिसको प्रतिष्ठित करने का महती दायित्व आचार्य जी साहित्य के माध्यम से पूरा करना चाहते हैं। उन्होने स्पष्ट तौर पर कहा है कि ''साहित्य के उपासक अपने पैर के नीचे की मिटटी को उपेक्षा नहीं कर सकते। हम सारे बाह्य जगत को असुन्दर छोड़कर सौन्दर्य की सृष्टि नहीं कर सकते। सुन्दरता सामंजस्य का नाम है। जिस दुनिया में छोटाई और अज्ञानी में, आकाश पाताल का अतंर हो वह दुनिया बाह्य सामंजस्यमय नहीं कही जा सकती.....हमें उस बाहय असौन्दर्य को देखना पड़ेगा। ''2

द्विवेदी जी सौन्दर्य के जिस रुप की विवेचना करते है उसमें सन्त कवियों के साधना की एक लम्बी परम्परा कृष्णभक्त कवियों के प्रेम की निरन्तर प्रवाहित धारा रवीन्द्रनाथ टैगोर की मानवतावादी विचारधारा और सबसे प्रमुख लोक जीवन का सहज, सरल, अकृत्रिम अनुभव सम्मिलित है। उनका सौन्दर्य बोध परम्परा और आधुनिकता से अनुप्राणित है। भारतीय परम्परा को लेकर जहाँ वे सौन्दर्य को विवेचित करते है, वहीं आधुनिक मूल्यों के सन्दर्भ में उन्हें पुनः परिभाषित भी करते हैं।

द्विवेदी जी अपने चारो उपन्यासों–'बाणभट्ट की आत्मकथा 'चारुचन्द्रलेख' 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' में सौन्दर्य–बोघ को परम्परा और आधुनिकता की संगति में कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करते है। शब्दों के माध्यम से वे उपन्यासों में चित्र परिवेश, तथा पात्रों का पाठक के मानस पटल पर चित्र खड़ा करते जाते है। उनके उपन्यासो को सांस्कृतिक–ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा जाता है। इसका कारण है इनमें अतीत का वह समाज है, वे व्यक्ति, परिवेश और पात्र के रुप में चित्रित है जो इतिहास का अटूट एवं महत्वपूर्ण हिस्सा है। द्विवेदी जी ने उपन्यासों में जिस तरह से कल्पना एवं इतिहास के बीच सामंजस्य स्थापित किया है वह उनकी कलात्मक दृष्टि को ही रुपायित करती है। उन्होने अपने उपन्यासों के लिए इतिहास के जिन काल–खण्डों को चुना उस काल उस युग को वे उसी की भूमि पर उतर कर पढ़ने की, समझने की चेष्टा

करते है। यथार्थबोध की विशेषता से संयुक्त कर वे उस परिदृश्य, परिवेश को और आभामय बनाने की कोशिश करते है औरं कल्पना इसमें उनका सहयोग करती है। कल्पना का सुन्दर सामंजस्य यथार्थ में लालित्य का पदार्पण कराना है और इतिहास इसकी रक्षा करता है।

द्विवेदी जी की पहली औपन्यासिक कृति है ''बाणभट्ट की आत्मकथा''। यहाँ पर सौन्दर्य–वर्णन के विस्तृत चित्र मिलते है। प्राकृतिक तथा स्त्री सौन्दर्य वर्णन में उपन्यासकार सिद्धहस्त है उसने सौन्दर्य के एक–एक उपादानों को सूक्ष्म रुप में देखा और चित्रित किया है। स्त्री के सौन्दर्य का वर्णन उन्होंने अत्यन्त उच्च भाव–भूमि पर किया जहाँ भोग और त्याग दोनों समान रुप से गतिमान होते है। इन वर्णनों में कहीं भी आधुनिक सौन्दर्य उपादनों की कृत्रिमता नही झलकती बल्कि उनमें प्राकृतिक सौन्दर्य की विशिष्टता प्राप्त होती है। चन्द्रमा की धवल ज्योतिर्धारा सीधे उसके मुख पर पड़ रही थी। उसका मुख श्वेत आवरण से जितना उदमावित था, उतना ही आवृत भी। परन्तु इस बार जो लालिमा उसके मनोहर मुख पर अनायास ही खेल गई ..... जाहनवी की धारा में प्रतिफलित रक्तोपल की भॉति जल चादर के परिद्वश्यमान ट्रीपशिखा की भॉति। इसी प्रकार गणिका मदनश्री के सौन्दर्य को भी जब उपन्यासकार उकेरने बैठता है तो कह उठता है '' उसके प्रवाल के समान लाल–लाल अधर युगल अनुराग सागर के तरंगो के समान मोहन दिखाई दे रहे थे। ..... उसकी बड़ी– बड़ी काली ऑखें शतदल–विषद्व भ्रमर की भॉति मनोहर थी। इन वर्णनो को देखकर काहा जा सकता है कि एक कवि की कल्पनामयी वेरावती वाणी की धारा किसी अवरोध को स्वीकार नही करती। उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का समन्वय सौन्दर्य–वर्णन की चारुता को आगे बढ़ा देता है। यहाँ सौन्दर्य विलासिता की वस्तु नही बल्कि प्रेम और संयम से निर्मित कलात्मक सौन्दर्य है। द्विवेदी जी ने इस सन्दर्भ में कहा है कि थोथी विलासिता में केवल भूख रहती है नंगी बुभक्षाः पर कलात्मक विलासिता संयम चाहती है, शालीनता चाहती है।.....जो जाति सुंन्दर की रक्षा और सम्मान करना नही जानती वह विलासी भले ही होले पर कलात्मक विलास उसके भाग्य में नही बधा होता।

आचार्य द्विवेदी के चारो उपन्यासों में जहा भी नारी सौन्दर्य का वर्णन हुआ है, वहॉ पवित्रता और मर्यादा का ही भाव दिखलाई पड़ता है। वे जहॉ भी सौन्दर्य को दखते हैं तो कह उठते हैं कि ऐसा सौन्दर्य जैसे पार्वती। एक वृद्धा तपस्विनी मन्दिर से बाहर आयीं शार्विलक ने देखा तो आश्चर्य से हतप्रभ हो गया इस वृद्धावस्था में भी उनके मुख मण्डल से दीप्ति सी झड़ रही थी। ललाट दर्पण के समान चमक रहा था सम्पूर्ण शरीर में शालीनता विखर रही थी। क्या पार्वती भी वृद्ध होती हैं। साक्षात पार्वती ही तो हैं।

ऐसा ही कुछ अनुभव राजा सातवाहन भी भगवती विश्णुप्रिया को देखकर करता है ऐसा जान पड़ता था कि जैसे सरस्वती ने वैराग्य का विग्रह धारण किया हो, कामनारहित भक्ति ने ही क्षीर सागर का आश्रय लिया हो।'' यह सौन्दर्यापुरित दृष्टि उनके उपन्यासों के साथ अन्य रचनाओं में भी प्राप्त होती है। नारी सौन्दर्य वर्णन में संस्कार–जनित गरिमा दिखलाई पडती है साथ ही उच्च कलात्मकता भी। द्विवेदी जी का सौन्दर्य बोध लोक से जुड़ा है। उन्होंने श्रमशील बालाओं में भी सौन्दर्य की सात्विकता को देखा है।

प्रकृति का शान्त,शुद्ध निर्मल सौन्दर्य तो उन्हें आकर्षण मे ऐसे बॉधता है कि वो उसके प्रत्येक अंग–उपांग से गहराई एवं आत्मीय ढंग से जुड़ जाते है। अपने उपन्यासों में जहाँ कही भी ऐसा अवसर उपलब्ध हो द्विवेदी जी शब्दो का ऐसा चित्र खीचतें है कि प्रकृति अपने सौन्दर्यमयी साकार रुप में खड़ी हो जाती है।

बाणभट्ट की आत्मकथा' में बाणभट्ट सौरभह्द की शोभा को देखकर मुग्ध हो जाता है और कह उठता है '' ऐसा जान पड़ता है कि जैसें प्रलयकाल में जब समास्त दिशाओं का

संधि–बंधन स्खलित हो गया था, उस समय आकाश मंडल ही पृथ्वी पर उलटकर इस हद रुप में रुपांतरित हो गया था ..... विकसित पुंडरीक के मधुबिंद् जल पर फैलकर मयूर–पुच्छस्थ चंद्रकृति के चिन्ह से हृदयतल को रंगीन बना रहे थे।'' पूरे उपन्यास में जहॉ भी उपन्यासकार को अवकाश मिलता, वहाँ बाणभट्ट के माध्यम से प्राकृतिक दृश्यों को मुग्ध होकर निहारने लगता है और काव्यत्मकता से भरी वाग्धारा प्रवाहित होने लगती है। द्विवेदी जी की प्रकृति को देखने की प्रमुख विशिष्टता यह है कि उसका रुप भी कथानक के साथ– साथ बदलता जाता है। बाण द्वारा देखा गया दृश्य एक उत्फुल्लता, शांन्ति का अनुभव कराता है वहीं चारु चन्द्रलेख में चन्द्रलेखा के द्वारा देखा गया दृश्य कि '' धीरे–धीरे पूर्व गगन मण्डल से नवमी का क्षीणप्राय चन्द्रमा उदित हुआ। नदी पुलिन के नर कंकाल और कपाल कर्पर उसकी शुभ्र ज्योत्सना में स्पष्ट दिखाई दे गये। .....ये कंकाल किसी दिन सुन्दर मनुष्य रहे होगें'' जीवन के नित परिवर्तित होते रुप को और उसके शाश्वत सत्य को अभिव्यक्त करते है। सौन्दर्य को देखने और समझने की एक दूसरी दृष्टि यहाँ कार्य करती है जो यह मानकर चलती है की मानव की जीजीविषा ही सबसे बड़ा सत्य है और कुछ भी स्थिर नही। यही वह शक्ति है, जो सुन्दर असुन्दर के भेद को मिटाकर नयी कलाओं का सृजन करती है। यही द्विवेदी जी का वह बोध है जो सौन्दर्य के लिए विरुद्धों का सामंजस्य अनिवार्य मानती है।''सौन्दर्य एक सर्जना है मनुष्य की सिसृक्षा का परिणाम।''

चारो उपन्यासों की संरचना में सांमतवादी संस्कृति के उस रुप को समझने का प्रयास किया गया है जो वर्तमान तथा भविष्य के समाज की आधारशीला है। सामतों और शासकों की विलासिता ने भोगवादी संस्कृति को तो बढ़ावा दिया ही, इसके साथ ही एक और वस्तु जो उन्होंने प्रदान की थी वह है श्रेष्ठ भारतीय कलाओं का विकासशील रुप। चारों उपन्यासों में द्विवेदी जी ने कला के विभिन्न रुपों का वर्णन किया है क्योंकि इनके द्वारा मानव के सामाजिक आस्त्वि को मजबूत स्तंम्भ प्राप्त होता है। इन उपन्यासों में नृत्य–संगीत को अनिवार्य रुप से सम्मिलित किया गया है। नृत्य संगीत के ये आयोजन जहाँ सांमतो की विलासिता को उभारते है वही जनता की रुचियों को भी प्रदर्शित करते हैं । छठी–सातवी शंताब्दी से बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी तक मयूर और नट नृत्य किस तरह जनता को मुग्ध कर रहे थे इस तथ्य को प्रस्तुत करने में चारुस्मिता, मंजुला और नाटी माता जैसे पात्रों को खड़ा किया गया है जो गणिका होकर भी कला के कारण सम्मान के योग्य थी। द्विवेदी जी के यहॉ यह नृत्य–कला व्यक्ति को केवल स्थूल आनन्द नही प्राप्त कराता बल्कि वह नर्तक को उस उच्च भाव–भूमि पर ले जाता है जहॉ वह अपना सबकुछ भूल जाता है और 'महाभाव' की अनुभूति करता है। जैसे मंजूला और नाटी माता का नृत्य उनके और नागर नट के बीच का एक अलौकिक सम्बन्ध निर्मित करता है। एक तरफ द्विवेदी जी जहाँ आभिजात्य संस्कृति में रचे बसे नृत्य का आयोजन करते हैं, वही दूसरी तरफ वे ग्रामीण युवतियों के नृत्य में उस सरलता और सहजता का दर्शन कराते हैं जो उस नागर सम्यता में भी नही प्राप्त होती। स्त्रियॉ तरंगायित उपांतवली लाल शारिकाऍ पहने हुई थीं वे उद्धाम भाव से नाच रही थीं..... उनकी चरियॉ तालानुग नही थी, मैं मुग्ध भाव से उदाम मनोहर नृत्य को देख रहा था।'' भले ही इन ग्रामीण स्त्रियों का नृत्य तालानुग न हो, 'अशिक्षित चरण न्याय' से युक्त हो परन्तु उसका उद्धेश्य सार्थकता से युक्त है अतः वह श्रेष्ठ है।

आचार्य द्विवेदी ने कला के विभिन्न रुपों को जो सामंतीय समाज की विलासिता के रुप मे थे उन्हे पुनः मानव जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुॅचाने वाले साधन के रुप में पुनर्सृजित किया है। राजप्रासादों के चाकाचौंध से भरे जीवन से साधारण जनों की आत्मिक ज्योति से प्रकाशमान करने के लिए उनके बीच ले आए।

चित्र कला और स्थापत्य कला के मनोरम वर्णन भी द्विवेदी जी के सौन्दर्य बोध को अभिव्यक्ति करते है। '' चातुष्पथों पर स्थापित विशाल यक्ष–मुर्तियॉ वह आश्चर्य और भय के साथ देखता उनका उॅचा कद, भारी–भरकम डील–डौल, चामरधारी दक्षिण हस्त कटिविन्यस्त मुद्रा में चिपके से बायें हाथ, बडे कुण्डल ..... उसे विचित्र प्रकार से आर्कषित करते थें। इस वर्णन में उपन्यासकार की काल–विशेष मे प्रचलित कला की पुनः सर्जना उसकी सौन्दर्य–चेतना को ही दिखलाती है। नृत्य नाटिकाओं का भी वर्णन द्विवेदी जी ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से किया है चाहे वह 'बाणभट्ट की आत्मकथां में रत्नावली का हो या 'अनामदास की पोथां में कोहलियों की नृत्य नाटिका का ।

अपने अपन्यासों में विभिन्न युगों की कलाओं का जो वर्णन उपन्यासकार ने किया–सामाजिक चेतना के निमार्ण में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। इस सन्दर्भ में नामवर सिंह कहतें है–'' आकस्मिक नही है कि द्विवेदी जी ने अपने सभी उपन्यासों में किसी न किसी बहाने नृत्य का आयोजन किया है। नृत्य भले ही बन्धनों के विरुद्ध विद्रोह को व्यक्त करने वाली सबसे जीवन्त कला हो किन्तु अन्य कलाऍ भी नृत्य के इस धर्म का अनुसरण करती है ..... इस प्रकार द्विवेदी जी की दृष्टि में कला और सौन्दर्य की सृष्टि विलास मात्र नहीं बल्कि बन्धनों के विरुद्ध विद्रोह है।

यह विद्रोह मनुष्य को मनुष्य बनाने का विद्रोह है। उनका सोन्दर्य–बोध एस संतुलित सोच की अपेक्षा करता है–जहॉ एक ही विश्वजनीन संस्कृति का निर्माण हो । द्विवेदी जी के चारों उपन्यासों में सौन्दर्य बोध का वह रुप है जो मनुष्य को मनुष्य के रुप स्थापित करता है। उनका मानना है कि जीवन को सुन्दर ढंग से बिताने के लिए भी जीवन का एक रुप होना चाहिए..... सुन्दर जीवन क्रियाशील होता है..... क्रियाशीलता को छोड़कर जीवन का सौन्दर्य टिक नहीं सकता।

सन्दर्भ0सूचीः

1 'बाणभट्ट की आत्मकथा,' आ0 हजारी प्रसाद दिवेदी, पृ0 207

2 'अशोक के फूल,' आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 164

3 'बाणभट्ट की आत्मकथा', आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 165

4 बाणभट्ट की आत्मकथा', आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 96

5 'हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली', पृ0 366

6 'पूनर्नवा', आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 172

7 'चारुचन्द्रलेख', आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 215

8 'बाणभट्ट की आत्मकथा', आ0 हजारी प्रसाद दिवेदी, पृ0 196

9 'चारुचन्द्रलेख', आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 89

(10) 'बाणभट्ट की आत्मकथा', आ0 हजारी प्रसाद दिवेदी, पृ0 112

(11) 'पूनर्नवा', प्र0 69, आ0 हजारी प्रसाद दिवेदी, पृ0 69

(12) दूसरी परम्परा की खोज नामवर सिंह पृ0 117